RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल. 0011/2012-14

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

कृण्वन्तो ओ३म् विश्वमार्यम्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

मूल्य : 2 रु.
वर्ष: 70 अंक : 8
सृष्टि संवत् 1960853114
26 मई 2013
दयानन्दाब्द 189
वार्षिक : 100 रू.
आजीवन : 1000 रू.
दूरभाष : 2292926, 5062726

जालन्धर

वर्ष–70, अंक : 8, 23/26 मई 2013 तदनुसार 11 ज्येष्ठ सम्वत् 2070 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

आत्मा का स्वरूप

-ले० आचार्य भद्रसेन शालीमार नगर, होशियारपुर

शरीर, मन के अधिष्ठाता आत्मा के स्वरूप को समझाने के लिए छान्दोग्य उपनिषद में इन्द्र-विरोचन और प्रजापति का एक सुन्दर आख्यान आता है कि प्रजापति ने घोषणा की, कि-'हृदय आकाश में जिस आत्मा का वास है, वह पाप, बुढ़ापा, मृत्यु, भूख, प्यास से रहित और सत्य काम है। उसकी खोज करनी चाहिए, उसी को जानना चाहिए, क्योंकि उसका ज्ञान होने पर सब लोकों तथा सभी कामनाओं की प्राप्ति हो जाती है।' प्रजापति की इस घोषणा को सुनकर देवों में से इन्द्र और असुरों में से विरोचन प्रजापति के पास पहुंचे। प्रजापति ने पूछा-किस इच्छा से तुम यहां आए हो ? उन्होंने कहा, हम घोषणा के अनुरूप आत्मा को जानना चाहते हैं।

तब प्रजापति ने कहा-यह जो आंख में पुरुष दिखाई देता है, वह आत्मा है, जो कि अमृत और अभय है। ऐसे ही जो जल या दर्पण में दिखता है, वह भी वही आत्मा है, जो कि आंख में दिखाई देता है। प्रजापति ने दोनों से कहा-पानी के बर्तन में देखो, यदि आत्मा के विषय में कुछ समझ न आए, तो फिर मुझसे पूछना। उन्होंने पानी के बर्तन में देखा और तब लोम से नख तक अपने प्रतिरूप (छाया) को देखा। तदनन्तर प्रजापति के कथनानुसार सुन्दर अलंकरण-वस्त्र धारण करके पुनः देखा, तब दर्पण में सुन्दर आभूषण, वस्त्रयुक्त अपने प्रतिबिम्ब को देखा। इस प्रकार जागते हुए दिखाई देने वाले अपने बाह्य रूप को ही आत्मा (अपना आपा) मानकर दोनों वहां से चले गए।

विरोचन ने वहां से जाकर सारी बात असुरों से कही और कहा, कि देह ही आत्मा है, इसी देह रूपी आत्मा की ही पूजा करनी चाहिए। इससे मनुष्य दोनों लोकों को प्राप्त कर लेता है। अतः असुर शरीर को ही सब कुछ समझने लगे।

पर इन्द्र को इतने से सन्तोष न हुआ और वह सोचने लगा कि दर्पण में दृश्यमान प्रतिबिम्ब शरीर के अलंकृत होने पर अलंकृत, अच्छे वस्त्रों से सुवस्त्रमय, शरीर के अन्धा, काणा, लंगड़ा होने पर प्रतिबिम्ब भी वैसा ही हो जाता है। अतः दर्पण आदि में दिखाई देने वाला आत्मा का रूप तो घोषणा के अनुकूल न होने से कल्याणकारक नहीं है।

इन्द्र ने प्रजापति के चरणों में पुनः उपस्थित होकर प्रार्थना की, कि जल वाले प्रतिबिम्ब को आत्मा मानने पर ये-ये दोष आते हैं। तब प्रजापति ने कहा-तूने ठीक ही विचारा है। हां, स्वप्न अवस्था में जो महिमाशाली अनुभव में आता है, वही आत्मा है।

इन्द्र ने जब इस पर विचार किया, तो यह परिणाम सामने आया, कि यद्यपि शरीर वाले दोष तो यहां नहीं आते, पर स्वप्न में ऐसा प्रतीत होता है, कि कोई इसे मार रहा है, कोई इस का पीछा कर रहा है। स्वप्न में अप्रिय अनुभव भी होते हैं, कभी-कभी वह रोने भी लगता है। अतः यह रूप भी घोषणा के अनुरूप न होने से कल्याणकारक नहीं है। इसलिए पुनः प्रजापति के पास जाकर इन्द्र ने अपनी शंका रखी।

प्रजापति ने इन्द्र को लक्ष्य की ओर कुछ बढ़ते हुए देखकर कहा, कि सुषुप्त अवस्था में जिस रूप की झांकी दिखती हैं, वही आत्मा है जो कि अमृत और अभय है।

इन्द्र ने जब इस पर विचार किया, तो यह निष्कर्ष सामने आया, कि यहां पहले जैसे दोष तो नहीं हैं। पर इस सुषुप्त अवस्था में यह आत्मा अपने आप को ही नहीं जानता, कि मैं यह हूं अर्थात् मेरा यह रूप है और न ही पांचों भूतों के विषय में कुछ जानता है। इस अवस्था में तो वह नाश या अपने आप के अज्ञान में ही लीन होता है। अतः इस अवस्था वाले आत्मा का यह रूप भी घोषणा के अनुकूल नहीं है। जब इस संशय को प्रजापति के आगे रखा, कि इस अवस्था में पहले वाले दोष तो नहीं है, पर यहां अपने आप को ही न जानने का दोष है।

तब प्रजापति ने आत्मा का स्वरूप समझाते हुए कहा-यह शरीर मरणधर्मा है, अमृत रूप अशरीरी आत्मा का यह देह अधिष्ठान (रहने, हरने की जगह) है। आत्मा स्वभाव से अशरीरी होता हुआ भी जब इस शरीर के साथ अपने आप को एक समझता है, तब उसके साथ सुख-दुख लग जाता है। वायु, अभ्र, विद्युत, गर्जना की तरह आत्मा अशरीरी होता हुआ भी इन की तरह निमित्त के संयोग से इस अवस्था या रूप में प्रतीत होता है।

जैसे रथ के साथ घोड़ा जुता होता है, वैसे ही यह आत्मा इस शरीर रूपी रथ के साथ जुता हुआ है। वह स्वयं शरीर नहीं है, हां वह ही आंख से देखता है, श्रोत्रों से शब्द सुनता है तथा नासिका, वाणी जैसे साधनों से तद्-तद् व्यवहारों को साधता है। चक्षु, मन आदि देखने, ऊहा-पोह करने आदि के साधन हैं। जो इन से देखने आदि का व्यवहार करता है, वही आत्मा है।[1]

इस सारे प्रकरण का भाव यह है कि कुछ व्यक्ति स्थूल दृष्टि से सोचने के कारण शरीर को ही आत्मा मानते हैं। पर यह शरीर तो प्रिय-अप्रिय से जुड़ता-बिछुड़ता है, रोग-शोक तथा मृत्यु से ग्रस्त होता है। यह देह तो अशरीरी आत्मा का केवल अधिष्ठानमात्र है, क्योंकि आत्मा नित्य, अभय, शुद्ध, पवित्र तथा ज्ञान स्वरूप है। शरीर द्वारा सम्पन्न होने वाली क्रियाओं, इच्छाओं तथा सुख-दुख आदि का निमित्त (कारण) आत्मा ही है और शरीर इनका अधिष्ठानमात्र है।

ऐसे ही कुछ व्यक्ति स्वप्न अवस्था के कर्ता-धर्ता मन को आत्मा समझते हैं। कुछ सुषुप्ति अवस्था की स्थिति को आत्मा समझते हैं, परन्तु जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं से भिन्न तुरीय अवस्थावान ही आत्मा है और उसी में आत्मा के लक्षण चरितार्थ होते हैं। अतः आत्मा पाप से निर्लिप्त, जरा से रहित, मृत्यु से निर्मुक्त, भूख-प्यास से दूर, नित्य, अमृत अभय और ज्ञानस्वरूप हैं। (शेष पृष्ठ 6 पर)

1. छान्दोग्य 8, 8-12 का यह संक्षिप्त रूप है।

यौगिक आहार

-डा० एच. कुमार कौल डायरैक्टर गांधी आर्य सी. सै० स्कूल, बरनाला

स्वास्थ्य मानव का जन्मसिद्ध अधिकार है। निःसन्देह भोजन से ही शरीर का विकास हो सकता है और कार्य करने की शक्ति बनायी रखी जा सकती है। मौलिक रूप से अच्छे स्वास्थ्य के लिए अच्छे पौष्टिक तत्वों की आवश्यकता होती है। आहार पौष्टिक तत्वों की ओर संकेत करता है। अधिक आहार करना, अपर्याप्त आहार करना तथा अशुद्ध आहार करना ही अधिकांश मानव रोगों के कारण है। बहुत सारे लोग जब भोजन करते हैं, तो अधिक जल्दी से, अधिक गर्म, अधिक ठण्डा, अधिक मात्रा में, अपौष्टिक तत्वों वाला और मिलावट वाला भोजन करते हैं। हमें खाने-पीने और खिलाने और पिलाने के मौलिक तत्वों का ज्ञान नहीं है। जर्मनी के प्रसिद्ध विशेषज्ञः डा० होलाथ ने ठीक ही कहा है-"उन रोगों को छोड़कर जो दुर्घटना, विष छोटे-छोटे से उग्र प्राणी तथा जन्मजात भ्रष्ट रचना के कारण हैं। बहुत सारे जाने-माने रोग प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से अनुचित आहार के कारण ही उत्पन्न होते हैं।"

भोजन यदि सन्तुलित है और इसको यदि अच्छी प्रकार चबाया जाए, तो मनुष्य को भूख अच्छी लगेगी और शरीर का विकास होगा। प्रत्येक ग्रास को पीसना, चबाना और मथना पहला यौगिक नियम है। कहा गया है कि "स्वर्ग हमें अच्छे खानपान के पदार्थ भेजता है, परन्तु दानव बुरे बाबर्ची।" छिलका उतारने, भिगोने, भूनने, तलने तथा अधिक पकाने से भोजन की शक्ति भी नष्ट हो जाती है और विटामिन भी। पानी जिसमें सब्जियों को उबाला और पकाया जाता है। यदि फैंका जाये तो वह सब्जियों की शक्ति और विटामिनों को फैंकना है।

दो विश्व युद्धों के बीच विटामिनों पर बहुत अच्छा अनुसन्धान किया गया था और दूसरे विश्व-युद्ध के पश्चात ही प्रोटीनों के अनुसन्धान की ओर ध्यान दिया गया। अवशेष तत्वों और आहारिक रेशों के कार्य पर हाल के वर्षों में बहुत कुछ कहा भी गया है। बढ़ते हुए भी विश्व के विकासशील देशों में अपर्याप्त अशुद्ध, आहार का ही बोलबाला है। भोजन के पोषण तत्वों में प्रोटीन, विटामिन, खनिज पदार्थ और जल का वर्गीकरण किया जा सकता है।

मानव शरीर की बनावट

द्रव्य	प्रतिशत
जल	63
प्रोटीन	27
चर्बी	22
खनिज पदार्थ	7
कारबोहाईड्रेट	2

यदि हम सन्तुलित आहार के प्रसंग में देखें तो शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए आवश्यक शक्ति, विटामिन, खनिज पदार्थ, चर्बी, कार्बोहाइड्रेट और दूसरे पोषण तत्व प्रदान करती है। आहार प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से मन को प्रभावित करता है।

जिस प्रकार दही को मथ कर इसके शुद्ध कण मक्खन बन जाते हैं उसी प्रकार जब आहार किया जाता है तो इसके शुद्ध कण मन का निर्माण करते हैं। योगीराज श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है-"जिससे जीव शक्ति, उत्साह शक्ति, और प्रसन्नता बढ़ जाती है वही आहार उत्तम है। इसके अतिरिक्त जो आहार स्वादिष्ट कोमल और कठोर होता है, वह सात्विक आहार होता है। जिस आहार से दर्द, दुःख और रोग हो जाते हैं, वह आहार राजसिक कहलाता है। जो आहार बासी, अस्वादिष्ट, दुर्गन्धपूर्ण और सड़े हुए होते हैं वे तामसिक आहार कहलाते हैं।" सात्विक आहार होता है, जो ताजा, साधारण, स्वास्थ्यकर और पौष्टिक होता है। इसमें दूसरी चीजों के अतिरिक्त फल, दूध, मक्खन, पनीर, गेहूँ, घी, सलाद, सोयाबीन, हरी और पीली सब्जियाँ, नींबू, सन्तरें, फल, प्रोटीन तथा विटामिन सम्मिलित है। यौगिक आहार में ताजी हरी सब्जियों, फल, दही और सलाद का अधिक प्रयोग होता है। विटामिन 'सी' मूल रूप से फलों तथा सब्जियों से प्राप्त होता है।

यौगिक आहार का उद्देश्य है अनुरूप विकास, जो शारीरिक मानसिक तथा नैतिक हो। वह पोषण तत्वों से पूर्ण होता है किन्तु बहुमूल्य नहीं, जैसा कि कई लोगों के विचार है।

बहुमूल्य आहार से जिगर, गुर्दे तथा पाचन रस सम्बन्धी रोग उत्पन्न होते हैं। यौगिक आहार से कुशलता, शक्ति और उत्साह बढ़ता है। हमारा आहार जीने के लिए होना चाहिए न कि जीना आहार के लिए। विटीमिन सी मूल रूप से फलों और सब्जियों से प्राप्त होता है।

आधुनिक औषधि विज्ञान ने नर और नारियों के लिए निम्नलिखित यौगिक आहार का समर्थन किया है। शहद को एक पूर्ण, प्राकृतिक और पौष्टिक भोजन माना जाता है। ये हृदय, मस्तिष्क और पेट को शक्ति देता है। खनिज पदार्थ और विटामिनों की कमी से होने वाले रोगों से बचाता है।

अधिक खाना तथा आहार में अधिक चर्बी का होना उच्च रक्तचाप और मधुमेह का कारण बन जाते हैं। हृदय पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अब भी हमें प्राचीन कहावत याद रखनी चाहिए-राजा की तरह नाश्ता करो, रोगी की तरह दोपहर का भोजन करो और भिखारी की तरह रात का भोजन करो। शरीर अधिक खाना खाने से चर्बीदार और मोटा हो जाता है उसी प्रकार कम खाने से व्यक्ति क्षीण तथा डरपोक बन जाता है।

जल, जो जीवन का रसायन है, प्रकृति का एक स्वतन्त्र महान उपहार है। अविकसित तथा विकासशील देशों में अरक्षित और अशुद्ध जल के कारण बहुत से रोग, शारीरिक व्याधायें उत्पन्न हो जाती है। पीने का जल, रोग उत्पन्न करने वाले तत्वों से सुरक्षित तथा पूर्ण स्वतन्त्र और स्वादिष्ट होना चाहिए। सोते समय या सुबह उठकर यदि जल का एक गिलास पिया जाये तो वह शरीर की आन्तरिक इन्द्रियों को धो डालने में सहायता कर सकता है। भोजन करते समय हमें जल पीने से बचना चाहिए क्योंकि इससे गैस बनकर पेट को फुला देती है। जो लोग कम जल पीते है उनमें रक्त की कमी हो जाती है, त्वचा सूख जाती है और पसीना कम आता है। पेचिश जैसे रोगों के शिकार हो जाते हैं।

भारतीय आहार में पौष्टिक तत्वों की बहुत कमी है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार 60% बच्चे और 50% होने वाली मातायें रक्त की कमी की शिकार है। जनसंख्या विस्फोट, निर्धनता के अतिरिक्त बाजार में अन्नों में मिलावट की समस्या भी है।

हमारे पूर्वज हमसे अधिक चुस्त, पुष्ट और स्वस्थ क्यों थे ? वे ताजी सब्जियां, दूध, मक्खन और फल खाते थे। वे सैन्डविच, हॉटडॉग, आइस-क्रीम, कोकाकोला, केक, चाकलेट जैसी चीजें नहीं खाते थे। न ही पालिश किए हुए चावल, दाले खाते थे। न ही वे विषैली दवाइयों की कल्पना कर सकते थे। उनका यौगिक आहार ताजा, साधारण और सात्विक होता था। वह मदिरा-विहीन प्राकृतिक उत्तेजक तत्व से दूर, स्वास्थ्यवर्धक और शक्तिदायक होता है। हिपोक्रेटिस ने ठीक ही कहा है, "आप का अन्न ही आप का चिकित्सक होगा।" पैथागोरस एक बड़े यूनानी फिलॉसफर ने ठीक ही कहा है-"भ्रष्ट अन्न खाकर अपने शरीर को अशुद्ध बनाकर विज्ञान की ओर ले जाने से दूर रहो।"

सम्पादकीय.....

धर्म और राजनीति

आज के राजनीति परिवेश में धर्म और राजनीति ये दोनों शब्द एक दूसरे के घोर विरोधी बन चुके हैं। धर्म के साथ राजनीति और राजनीति के साथ धर्म सुनकर राजनीति करने वाले कुछ लोगों के हृदय में ये कांटों की तरह चुभने लगते हैं। सही मायने में दत्तचित्त होकर वास्तविकता की तह तक पहुंचने में प्रयत्नशील रहे बिना हर चीज बुरी लगने लगती है। यदि हम धर्म एवं राजनीति की गहराई तक सुक्ष्मावलोकन सम्यक रूपेण दृष्टिपात करें तभी वास्तविकता दर्पण की तरह हमारे सामने दृष्टिगोचर होगी। धर्म शब्द का अर्थ सिर्फ तथाकथित धार्मिक मान्यताओं से नहीं है। धर्म शब्द का एक बहुत विस्तृत व्यापक अर्थ है। जब तक व्यक्ति धर्म की वास्तविकता को सम्यक् रूप से हृदयंगम नहीं कर लेता तब तक गलतफहमियों का सतत शिकार होता रहेगा।

धार्यते इति धर्मः जिसको धारण करने से मनुष्य का जीवन स्तर ऊपर उठे, व्यवहारिकता से ओत प्रोत दिनचर्या हो, लोक और परलोक सुधरे, मनुष्य का सर्वांगीण विकास हो, यही धर्म का स्वरूप है। किसी चीज की आंतरिक सत्ता धर्म से ही अभिहित है। एक दृष्टान्त के माध्यम से इस बात को और स्पष्ट करने का प्रयास कर रहा हूं। जैसे कि अग्नि का धर्म जलाना है, पानी का धर्म शीतलता है । यदि अग्नि से दाह्य शक्ति निकाल ली जाये, और पानी से शैत्य शक्ति निकाल ली जाये तो आग और पानी का कोई अस्तित्व ही नहीं रह सकता। न पानी पानी रहेगा, न अग्नि अग्नि रहेगी। ठीक इसी प्रकार से व्यक्ति के अन्दर से धार्मिक तत्वों को निकाल कर फैंक दिया जाये तो व्यक्ति की स्थिति भी तद्वत् हो जायेगी।

· धर्म और राजनीति एक दूसरे के विरोधी न होकर एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों के परस्पर अन्योन्याश्रित संबंध हैं। एक के लिए दूसरे की अनिवार्यता है। मिसाल के तौर पर यथासंभव स्पष्टता की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करवाना चाहता हूं। एक गांव में एक अंधा और एक लंगडा रहते थे। गांव में भयंकर आग लग गई। अब यहां मुसीबत आकर खड़ी हो गई कि अंधे और लंगडे बचे तो कैसे। लंगडे ने अंधे से कहा, भाई हम दोनों एक दूसरे के सहायक बने बिना बच नहीं सकते। जीवन हमारे सुरक्षित नहीं रह सकते। देख भाई अंधे मैं तेरे कंधे पर बैठ जाता हूँ फिर मैं रास्ता बताऊंगा। हम दोनों गांव से बाहर आ जायेंगे और हमारा जीवन बच जायेगा। ठीक यही गति राजनीति और धर्म के अन्दर है धर्म के बिना राजनीति सुरक्षित नहीं है और राजनीति के बिना धर्म सुरक्षित नहीं है।

धर्मो रक्षति रक्षितः जो धर्म की रक्षा करता है उसकी रक्षा धर्म करता है। अतः लंगडे रूपी धर्म द्वारा दिखाये गये मार्ग का अनुसरण राजनीति रूपी अंधे को अहर्निश करने की अत्यावश्यकता है। धर्म व्यक्ति को हर वक्त हर जगह सही दिशा की तरफ ले जाने का मार्ग प्रशस्त करता है। लोभ लालच एवं स्वार्थ के दल-दल रूपी कीचड़ से बाहर निकाल कर स्वच्छ पवित्र धरातल पर लाकर खड़ा कर देता है। जहां पर राजनीति हमें एक व्यवस्था देती है, वहां पर धर्म व्यवस्था को सुव्यवस्थित एवं सुचारू रूप से संपादित करने हेतु सुव्यवस्थापक प्रदान करता है। जैसे कि अगर किसी व्यक्ति को 1000/-रूपये दिए जाए और कहा जाए कि इसका सही ढंग से दूसरों के ऊपर खर्च करो। ऐसी स्थिति में राजनीति व्यक्ति को दिग्भ्रमित करेगी। लोभ लालच एवं स्वार्थ के कीचड़ में धंसा देगी। राजनीति की दल-दल बुराईयों में डुबो देगी। ऐसी स्थिति में धर्म एक नई दिशा एक नई किरण, एक नई रोशनी प्रदान करेगा। राजनीति वश व्यक्ति सोचेगा कि, अरे! दूसरों पर खर्च करने का क्या लाभ? दिखावे के लिए थोड़ा बहुत कर लो बाकि सारा हजम कर लो, परन्तु धर्म कहेगा- अरे! सावधानी से रहो, कर्त्तव्य का पालन करो, ढ़ंग से पैसों का इस्तेमाल करो। आज दूसरों का दिया हुआ खा रहे हो। आगे कई गुणों के रूप में चुकाना पड़ेगा।

अवश्यमेव भोक्तव्यम् कृतम् कर्म शुभाशुभम्

जैसा करोगे वैसा अवश्य भोगोगे। यानि कर्त्तव्यच्युत होने से व्यक्ति को धर्म ही बचाता है। धर्म की सुगंध से सुगंधित होकर व्यक्ति ही राजनीति को स्वच्छ और पारदर्शी रख सकते हैं। जिस व्यक्ति को किसी चीज का भय ही नहीं हो अपने आप को ही सर्वोपरि समझता हो वह व्यक्ति कभी भी समाज को सुख शान्ति एवं समृद्धि पथ पर अग्रसरित नहीं कर सकता। जब व्यक्ति के अन्दर यह भय अपने आप विद्यमान रहे कि बुरे काम का बुरा नतीजा मिलेगा। परमात्मा की तेज नज़र से नहीं बच पाऊंगा तभी व्यक्ति सन्मार्ग पर चल सकता है। कर्त्तव्य का पालन अच्छी तरह से कर सकता है। लोभ, लालच एवं स्वार्थ के दल-दल कीचड़ से कमल की तरह पुष्पित पल्लवित एवं विकसित हो सकता है। एक बालक जो अपने माता-पिता और बड़ों के सामने गलत काम करने से डरता है, यदि उसे पता चल जाये कि मुझे गलत काम करने की सजा नहीं मिलेगी तो वह निडर होकर जंगल में शेर की तरह विचरण करता रहेगा। ठीक इसी प्रकार से राजनेता जो राजनीति करते हैं देश को उन्नति की मंजिल पर ले जाने की कसम खाते हैं, स्वार्थ से ऊपर उठकर प्रजा की हर प्रकार की देखभाल करने की कसम खाते हैं यदि उन्हें ईश्वर की न्याय व्यवस्था और कर्मव्यवस्था पर विश्वास नहीं उनके अन्दर धार्मिक तत्वों का समावेश न हो, उनके संस्कार अच्छे न हो तो वह राजनेता, वह समाज का ठेकेदार, वह शासक कर्त्तव्य पालन से कोसों दूर रह कर रिश्वत लूट एवं घोटालों में लगा रहेगा।

अतः मेरा लिखने का यही अभिप्राय है कि व्यक्ति उच्च पद पाने से पहले अपने आपको देखे समझे विचार करें और न्यूनता कोई हो तो उसे दूर करने का प्रयास करें। तभी देश सर्वांगीण विकास के पथ पर अग्रसरित होता रहेगा हर जगह सुख शांति का वातावरण होगा, देश में अपराधिक घटनाएं कम होंगी और हमारा देश खूब तरक्की करेगा।

-प्रेम भारद्वाज सम्पादक एवं महामंत्री

धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचाने वालों के खिलाफ हो कड़ी कार्रवाई

आर्य समाज नवांशहर के पदाधिकारियों एवं सदस्यों ने हरियाणा के रोहतक के नजदीक गांव करौंदा में स्थित सतलोक आश्रम के महन्त की ओर से आर्य समाज की शिक्षाओं व ग्रंथों के खिलाफ प्रचार करने पर कड़ी आपत्ति दर्ज की है। आर्य समाज नवांशहर के वरिष्ठ उप प्रधान श्री विनोद भारद्वाज एवं सभा मंत्री श्री सुरेन्द्र मोहन तेजपाल ने आर्य समाज के विरुद्ध कथित तौर पर विपरीत प्रचार करने वाले सतलोक आश्रम के महन्त की तीखे शब्दों में आलोचना की है। उन्होंने कहा कि आर्य समाज के पवित्र ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश तथा शिक्षाओं का उपरोक्त महन्त की ओर से गलत प्रचार करने के चलते समूचे आर्य समाज में रोष पाया जा रहा है। उन्होंने कहा कि आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती के प्रति अपशब्द कहने और सत्यार्थ प्रकाश के खिलाफ किसी भी प्रकार की टिप्पणी किये जाने की प्रक्रिया को बर्दाश्त नहीं किया जायेगा। आर्य समाज एक सुधारवादी लहर है जिससे कि भारतीय समाज में फैले पाखंड को खत्म करके लोगों को वेदों की ओर मोड़ा गया और नवचेतना का रास्ता दिखाया गया। उन्होंने सरकार से मांग करते हुये कहा कि धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचाने वाले उक्त महन्त के खिलाफ कडी कार्रवाई की जाये। इस अवसर पर आर्य समाज के ललित शर्मा, प्रो. सतीश बरूटा, ललित मोहन पाठक, विपिन तनेजा, अरविन्द नारद, राकेश कुमार तथा जिया लाल शर्मा आदि उपस्थित थे।

टुक मेरी ओर निहार प्रभो!

-ले० देवनारायण भारद्वाज 'वरेण्यम' अविन्तिका प्रथम, रामघाट मार्ग, अलीगढ़, (उ०प्र०)

उस रोज वेदी से एक अच्छा भजन सुनाया जा रहा था। जिसके सुन्दर मधुर बोल थे-अजब हैरान हूँ भगवान् तुम्हें कैसे रिझाउँ मैं। कोई वस्तु नहीं ऐसी जिसे संवा में लाउँ मैं।।

इसके तत्काल बाद मेरा प्रवचन था। भजन गायक को धन्यवाद देते हुए मैंने कहा कि भजन के अनुसार ईश्वर की पूजा के लिए हम उसे कोई भेंट नहीं दे सकते हैं, फिर भी ऐसी वस्तु है जो मेरी अपनी है और उसे प्रभु को अर्पण किया जा सकता है। वह क्या है ? सामवेद मंत्र इसे गा-गाकर हमें समझाता है।

उप त्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम्। नमो भरन्ति एमसि॥14॥

इस मन्त्र का भाव गायन मैंने इस प्रकार प्रस्तुत कर दिया :-

प्रभु तुम्हें नमन प्रभु तुम्हें नमन।
मेरे प्यारे प्रभु तुम्हें नमन॥

मैंने इस दुनिया को देखा। देखा जड़-चेतन का लेखा।

देखी प्रभु की सर्वत्र देन, तन-मन-धन-बुद्धि और जीवन॥

तुम्हें तुम्हारा अर्पण कैसा, अपने पास नहीं कुछ ऐसा।

एक नमन ही अपना ठहरा, प्रभु तुम्हें समर्पित यही नमन॥

दिन रात नित्य संध्या प्रभात। मन में मंडराती यही बात।

हर समय नाथ का साथ रहे, यह नाथ नमन में रहे मगन॥

इस कथन के समर्थन में अथर्ववेद के दो मन्त्र प्रस्तुत किये:-

नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत।

अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन॥

(अथर्व काण्ड 13 सूक्त 4 (5) 48-49)

अर्थात्-हे देखने वाले ! तेरे लिए नमस्कार होवे। हे देखने वाले! मुझको भोजन एवं भक्षण सामर्थ्य के साथ यश के साथ तेज के साथ और वेदज्ञान के बल के साथ मेरी ओर भी देख। मनुष्य सर्वदा परमात्मा की उपासना से पुरुषार्थ और विवेक पूर्वक सब आवश्यक पदार्थ पाकर आनन्द भोगें।

1.-कौन किसको देखता है ?

महात्मा मुन्शीराम स्वामी श्रद्धानन्द ने हरिद्वार में गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की। वे एक से एक योग्य आचार्य को गुरुकुल में नियुक्त करके छात्रों को विद्या सम्पन्न बनाना चाहते थे। उस समय संस्कृत शिक्षा के लिए काशी को सर्वोपरि देखा जाता था। काशी में पं० काशीनाथ शास्त्री जी प्रतिष्ठित थे। मुन्शीराम जी ने उनकी योग्यता को देखा और उनकी मान मनौती करके गुरुकुल में ले आये। हरिद्वार में महाकुम्भ का मेला लगा, महामना पं० मदन मोहन मालवीय को हाथी पर बैठाकर उनकी शोभायात्रा निकाली जा रही थी। आचार्य काशीनाथ शास्त्री भी उनकी सवारी को देखने के लिए भीड़ में शामिल हो गये। हाथी पर बैठे-बैठे महामना ने उन्हें देख लिया। हाथी रुकवाया गया। वे नीचे उतरकर काशीनाथ जी के पास पहुँचे। अभिवादन किया। कुशल क्षेम पूँछी। तब उन्होंने आगे प्रस्थान किया। महामना की ओर देखने वाले, पहले से ही उनकी दृष्टि में बसे थे। मालवीय जी की महानता शास्त्री जी के मन में बसी थी, तभी तो परस्पर दोनों ने एक दूसरे को देखा।

2-परुषार्थ से परमार्थ संभव

परमेश्वर मेरी ओर देखिये। मुझे अन्नाद्येन से सम्पन्न कर दीजिए, सभी को अन्न-भोजन चाहिए। इससे बढ़कर भक्षण सामर्थ्य चाहिए जो शारीरिक श्रम से ही उत्पन्न होती है। मथुरा के भोजन भट्ट चौबे जी थाल भर रबड़ी, थालभर पूड़ी-कचौड़ी खाते हैं, फिर बगीची में जाकर भांग घोटते, दण्ड बैठक करके पचाते हैं, और यजमान को धन्य करने के लिए फिर खाने के लिए तैयार हो जाते हैं। इस आहार-विहार से कोई रचनात्मक उपलब्धि नहीं होती है। ऐसे लोग न तो प्रभु की ओर देखते हैं और न ही प्रभु ही उनकी ओर देखते हैं। जैसे अन्यान्य प्राणी खाते-पीते संतति उत्पन्न करते और मर जाते हैं वैसे ही एक दिन यह भी संसार से विदा हो जाते हैं।

3-श्रम से मिलता श्रृंगार

मानसिक-वाचिक-शारीरिक श्रम सभी उपयोगी हैं, किन्तु आधार शारीरिक श्रम ही है। शारीरिक श्रम करने से खुलकर भूख लगती है। भली प्रकार से खाने योग्य अन्न भोजन को पचाया जा सकता है जिससे शारीरिक, मानसिक-वाचिक सभी शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। यही श्रम मनुष्य को यश से विभूषित करता है। गुरुनानक जी के बहुत सारे शिष्य थे, उनमे से अनेक योग्य शिष्य उनके उत्तराधिकारी बनना चाहते थे। गुरू नानक जी ने घोषणा की कि मैंने अपने उत्तराधिकारी का नाम पत्र पर लिखकर लिफाफे में बन्द कर दिया है। मेरे देहान्त के बाद खोल लिया जाये। खोला गया, तो उसमें बड़े-बड़े उपदेशक, गायक एवं मंचासीनजन अपने नाम की अपेक्षा रखते थे, उनमें से किसी का नाम नहीं था। नाम था-तो उसका था-जो शान्तभाव से आश्रम की व्यवस्था एवं बर्तनों को मांजने का काम करता था-लहणा। जिन्हें बाद में गुरु अंगददेव के नाम से पुकारा गया। गुरूग्रन्थ साहिब में ऐसे ही परिश्रमी पुरूषों के भजन-गीत सम्मिलित किये गये हैं। जूता गांठने वाले रैदास एवं कपड़ा बुनने वाले कबीरदास की साखी तथा अन्यान्य सन्त कवियों के शब्द भरपूर संख्या में पवित्र ग्रन्थ साहब में संकलित हैं।

4-शुद्धाहार देता तेज निखार

कोई भी व्यक्ति जब अपमिश्रण अखाद्य रहित शुद्धाहार करके उसे पचाता है तो उसके चेहरे पर तेजस्विता की झलक दिखाई देती है। यही तेज उसके मुख को दमकाता है, उसे सौन्दर्यशाला में जाकर श्रृंगार कराने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। "जैसा खाये अन्न वैसा बने मन" के अनुसार शुद्ध आहार से शुचिर विचार और शुचिर विचारों से मधुर व्यवहार बनता है। यही यशस्वी व्यक्ति समाज में तेजस्वी बनकर उसका मार्गदर्शन करने लगता है। स्वामी सर्वदानन्द ने मथुरा के पानीगांव में भ्रमण करते हुए एक स्वस्थ, सुगढ़ किशोर को गाय, भैंस पशुओं को चराते हुए देखा। उसे पिता की सहमति से अपने साधु आश्रम में ले आये। वह रसोई में पाचक का काम करने लगा और उन पाठों को भी सुन सुनकर समझने लगा, जो आचार्यों द्वारा आश्रम के ब्रह्मचारियों को पढ़ाये जाते थे। स्वामी जी से आग्रह पूर्वक अध्ययन करने लगा। पढ़ने वाले ब्रह्मचारियों में से अनेक आचार्य, उपदेशक धर्माचार्य बने, किन्तु पानी गांव का वह किशोर धूरिया धुरेन्द्र शास्त्री एवं स्वामी ध्रुवानन्द सरस्वती बनकर राजे रजबाड़ों का राजगुरू, सार्वदेशिक सभा का प्रधान एवं विश्व भ्रमण करके वैदिक संस्कृति का उद्धारक बना।

5-यश-तेज एवं वर्च की त्रिवेणी

किसी भी व्यक्ति का सम्पूर्ण व्यक्तित्व उसके तन-मन-वाणी की त्रिवेणी में प्रवाहित होता है। शारीरिक क्रिया कलाप से वह कृतियों का निर्माण करता है, जो उसको कीर्ति प्रदान करती हैं, जैसी मनुष्य की तेजस्विता होती है, निर्माण में भी वह चमक आ जाती है, और जब उसका समाज द्वारा उपयोग किया जाता है, यही गुणवत्ता उसको वाणी प्रदान कर देती है, सर्वत्र उसका गुणगान होता है। यही त्रिवेणी उसको गंगा-यमुना-सरस्वती के संगम की भांति सुयश प्रदान कर विश्वभर में प्रसिद्ध कर देती है।

उपसंहार-सांसारिक मनुष्य क्या चाहते हैं इसे उर्दू के महान शायर ने अपने शेयर में प्रस्तुत कर दिया है-

सुनी हिकायत-ए-हस्ती तो दरमियाँ से सुनी।
न इब्दिता मालूम है, न इन्तिहा की खबर।।

मन्त्र में चार सोपान हैं-प्रथम-अन्नाद्येन अंतिम ब्राह्मणवर्चसेन मध्य में दो यशसा-तेजसा हैं। सामान्यजन मध्य के यशसा-तेजसा को प्राप्त करने के लिए कृत्य-कुकृत्य करते हैं। प्रथम-अन्नाद्येन की उपेक्षा कर देते हैं तो अन्तिम उद्देश्य ब्राह्मण से वंचित रहकर आवगमन के चक्कर में मंडराते हैं। राष्ट्र में उपस्थित सन्त महात्मा अपनी कथाओं को लाखों-लाख की भीड़ में सुनाते हैं, मन्त्र के इस सोपान की उपेक्षा से धरती को श्मशान बनाते चले जाते हैं। भक्तजनों! आओ देखो प्रभु की ओर और उसके विधि-विधान वेद की ओर उसको देखोगे तो वही श्रम से पचाये जाने वाला अन्न पुरुषार्थपूर्वक ब्रह्मज्ञान की शक्ति प्रदान करेगा, जिससे आप स्वत: यश एवं तेज से विभूषित होकर प्रभु प्रेम के पात्र बन सकते हैं।

शरीर त्यागते समय जीवात्मा की स्थिति

-ले० महात्मा चैतन्यमुनि महादेव सुन्दर नगर (हि०प्र०)

(गतांक से आगे)

वास्तव में महर्षि और उपनिषदों के ऋषि एक ही बात कह रहे हैं.... पूर्व हमने ब्रह्म-ज्ञानी का विवेचन करते हुए बताया है (छान्दो० उप०4-15-5) कि वह 'अर्चि' आदि स्थितियों को प्राप्त होता हुआ अपने 'अमानव' रूप को प्राप्त होता है। उत्तरायण और दक्षिणायन का विवेचन करते हुए हमने यह भी बताया है (छान्दो०5-10-1,2) सकाम तथा निष्काम-कर्मियों की भिन्न-भिन्न प्रकार की गतियां किस प्रकार से होती है। मुख्य रूप से तो जीव 'निष्कामी' और 'सकामी' दो प्रकार के ही होते हैं मगर छान्दो० उप० (5-10-8) में 'जायस्व-म्रियस्व' जीव भी बताए गए हैं तथा उनकी गति किस प्रकार की होती है यह भी बताया गया है। अब इस समूचे प्रकरण का अवलोकन करते हुए यहां पर महर्षि और उपनिषद् के ऋषि के कथन को समझने की जरूरत है। उपनिषदों के अनुसार 'निष्कामी' अर्थात् ब्रह्म-ज्ञानी की गति बताई है कि-'वह अर्चि आदि स्थितियों से होता हुआ चन्द्र-लोक और फिर ब्रह्म-लोक में पहुंचता है।' महर्षि ने भी उसकी यही गति बताई है-'पहले दिन सूर्य.....(से आरंभ करके अन्त में) बारहवें दिन सब दिव्य उत्तम गुण प्राप्त होते हैं।' दूसरे हैं 'सकाम-कर्मी' जिनकी गति के बारे में उपनिषद् कहता है कि-'वह मन्द-ज्योति की क्रमिक श्रृंखला से गुजरता हुआ चन्द्र-लोक तक और फिर वहां से वापस लौट आता है अर्थात् उसे सकाम कर्मों का फल भोगने के बाद पुनः जन्म-मरण के चक्र में आना होता है।' महर्षि ने सकामी जीव की गति के बारे में कहा है-'जब यह जीव शरीर छोड़कर सब पृथिव्यादि पदार्थों में भ्रमण करता है....' तीसरे हैं 'जायस्व-म्रियस्व' जिनके बारे में उपनिषद् का कहना है कि-'जैसे सूण्डी तिनके के अन्त पर पहुंचकर, दूसरा कोई सहारा पकड़कर, अपने को खींच लेते हैं, वैसे आत्मा भी इस शरीर के अन्त पर पहुंचकर, दूसरे मनुष्य व पशु आदि शरीर का सहारा लेकर अपने को खींच लेता है।' इस 'जायस्व-म्रियस्व' जीव की गति के बारे में महर्षि दयानन्द जी का कथन है कि वह-'....इधर-उधर जाता हुआ कर्मानुसार ईश्वर की व्यवस्था से जन्म पाता है....।' वास्तव में जो बात उपनिषद् कह रहा है वही बात महर्षि जी भी कह रहे हैं। सार रूप में हम इस पूरे प्रकरण को इस रूप में समझ सकते हैं कि महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने यजुर्वेद (39-6) में 'निष्काम' जीवों की मरने के बाद की दशा का वर्णन किया है और यजुर्वेद (39-5) में 'सकाम' तथा 'जायस्व-म्रियस्व' जीवों की गति के बारे में बताया है। इस प्रकार चिन्तन करने से भिन्नता नहीं दिखाई देती है....

पण्डित हरिशरण सिद्धान्तालंकार जी ने वेद के एक मन्त्र को लेकर बहुत सुन्दर व सार्थक व्याख्या की है जिसका भावार्थ हम यहां दे रहे हैं-**असौ यः पन्था आदित्यो दिवि प्रवाच्यं कृतः। न स देवा अतिक्रमे तं मर्तासो न पश्यथ वित्तं में अस्य रोदसी।।** (ऋ० 1-105-16) संसार में तीन मार्ग हैं। पहला पृथिवीलोक पर चलने वालों का 'अग्नि' का मार्ग है। पृथिवी-लोक पर चलने वाले अर्थात् पार्थिव भोगों में मस्त। इनके यहां सदा चूल्हा जलता रहता है। ये खाने-पीने में ही लगे रहते हैं। एवं इनका मार्ग ही 'अग्नि' नाम वाला हो गया। ये पैदा होते हैं, कुछ देर खा-पीकर मर जाते हैं, अतः 'जायस्व म्रियत्व' योनि वाले कहलाते हैं। दूसरा मार्ग अन्तरिक्ष-लोक में चलने वालों का है। यह 'चन्द्र-मार्ग' है। ये सद्गृहस्थ बनकर भोगों को जुटाते हुए भी उनमें आसक्त नहीं हो जाते। भोगों में रत रहते हुए भी भोगी नहीं बन जाते। ये उत्तम सन्तानों का निर्माण करके 'पिता' बनते हैं। इनका मार्ग 'पितृयान-मार्ग' कहलाता है। ये चन्द्रलोक में जन्म लेते हैं, अतः ये अन्तरिक्ष लोक से जाने वाले कहलाते हैं। तीसरा मार्ग देवों का है। ये सम्पत्ति का त्याग व दान करके ज्ञानज्योति से दीप्त होते हैं और औरों को ज्ञान से द्योतित करते हैं। इनका मार्ग प्रकाशमय होने से द्युलोक का मार्ग कहलाता है। यही 'आदित्य-मार्ग' है। इस मार्ग से जाते हुए ये व्यक्ति उस स्वर्ज्योति प्रभु को प्राप्त करने वाले होते हैं। मन्त्र में इस देवयान का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि वह आदित्य नाम वाला जो मार्ग है, द्युलोक में इस रूप में बनाया गया है कि यह अत्यन्त स्तुति के योग्य होता है। हे देवो! मैं उस मार्ग का उल्लंघन नहीं करता। मैं इसी देवयान मार्ग पर चलता हूँ। 'यह मार्ग द्युलोक में बनाया गया है।' इसका भाव यही है कि यह ज्ञानप्रधान है, ज्ञानमार्ग है। इस मार्ग पर चलने वाले ज्ञानी पुरूष के कर्म सदा पवित्र होते हैं। शुद्ध हुआ-हुआ यह उस शुद्ध प्रभु को पाने वाला बनता है....पार्थिव भोगों के पीछे मरने वाले, देवयान मार्ग को नहीं देखते....वह उनके क्षेत्र से दूर है....

बृ०उप० (4-3-33) में कहा गया है-'मनुष्यों में जो कोई स्वामी, शासक, स्वस्थ शरीर वाला, भाग्यशाली, ऐश्वर्य-सम्पन्न व्यक्ति है वह जिस आनन्द को भोगता है उसे 'मानुष-आनन्द' कहते हैं। इस प्रकार के सौ मानुष-आनन्दों से लोक-लोकान्तरों के विजेता, जितेन्द्रिय 'पितरों' का एक आनन्द बनता है। पितरों के सौ आनन्दों से संकल्प-शील मन वाले 'गन्धर्वों' का एक आनन्द बनता है। सौ गन्धर्वों के आनन्द से अपने कर्म से ऋषि बनें, आर्ष-बुद्धि वाले 'कर्म-देवों' का एक आनन्द बनता है। कर्म-देवों के सौ आनन्दों से जिन्हें जन्म से ही दिव्य गुण प्राप्त हुए हों उन 'जन्म-देवों' का एक आनन्द बनता है। जन्म-देवों के सौ आनन्दों से श्रोत्रिय, पाप-रहित तथा कामना से न बिन्धे हुए व्यक्ति को जो आनन्द प्राप्त होता है उस 'प्रजापति-लोक' का एक आनन्द बनता है। सौ प्रजापति-लोकों के आनन्द से एक 'ब्रह्म-लोक' का आनन्द बनता है। श्रोत्रिय, पाप-रहित तथा कामना से न बिन्धे हुए व्यक्ति को भी यही आनन्द प्राप्त होता है। यही परमानन्द है, यही ब्रह्म-लोक है।'

आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय आबू पर्वत का 23वां वार्षिकोत्सव

आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय आबू पर्वत के तेईसवें वार्षिकोत्सव एवं वेदारम्भ संस्कार का दिनांक 25, 26, 27 मई 2013 शनिवार, रविवार, सोमवार को आजोयन किया गया है। इस अवसर पर नए विद्यार्थियों को गुरुकुल में प्रवेश दिया जाएगा। पांच कक्षा पास लगभग 10-11 वर्ष की आयु के विद्यार्थी गुरुकुल में प्रवेश पा सकेंगे, पंचम कक्षा पास विद्यार्थियों की लिखित परीक्षा ली जाएगी, परीक्षा में पास होने वाले विद्यार्थी को ही प्रवेश दिया जाएगा। इसलिए जो सज्जन अपने पुत्रों को चरित्रवान् एवं सुयोग्य विद्वान् बनाना चाहते हैं, वे गुरुकुल में प्रवेश दिलाने हेतु अपने पुत्रों को साथ लेकर इस समारोह में पधारें। पांचवी कक्षा का प्रमाण पत्र साथ लाएं।

1. निःशुल्क आवास व शिक्षा व्यवस्था।

2. आर्ष पाठ विधि से पढ़ाई जाने वाली शास्त्री आचार्य तक की शिक्षा। गुरुकुल झज्जर से सम्बन्धित शास्त्री एवं आचार्य उपाधि महर्षि दयानन्द विश्व विद्यालय, रोहतक (हरियाणा) द्वारा प्रदान की जाती हैं।

2. कम्प्यूटर व्यवस्था-गुरुकुल में छात्रों को कम्प्यूटर की शिक्षा भी दी जाती है। विशेष-महर्षि दयानन्द सरस्वती निर्दिष्ट पाठविधि के द्वारा बिना परीक्षा के वर्णोच्चारण शिक्षा से लेकर अष्टाध्यायी महाभाष्य तक पढ़कर संस्कृत के विद्वान व्याकरणाचार्य बनने के इच्छुक जिज्ञासु ब्रह्मचारियों के लिए विद्वान् आचार्यों द्वारा गुरुकुल में निःशुल्क पढ़ाने की व्यवस्था है। इसमें प्रवेश के लिए छात्र कम से कम कक्षा आठवीं पास होना अनिवार्य हैं।

इस समारोह में उच्चकोटि के सन्यासी, महात्मा, विद्वान्, भजनोपदेशक व राजनेता पधार रहे हैं। धर्म लाभ के इच्छुक आर्य बन्धु सपरिवार उपस्थित होकर धर्म लाभ प्राप्त करें।

नोट-विशेष जानकारी के लिए 10 रुपए डाक टिकट भेजकर गुरुकल की नियमावली मंगवाएं। **-स्वामी धर्मानन्द सरस्वती**

आचार्य रूप प्रभु से हम सुमति पावें

-ले० डा. अशोक आर्य-104 शिप्रा अपार्टमैंट कौशाम्बी

हमारा यह प्रभु हमारा आचार्य भी है। जिस गुरुकुल में हम ने शिक्षा प्राप्त करना है, उस गुरुकुल के आचार्य परम पिता परमात्मा के हम अन्त वासी है। अन्त: वासी होने के नाते हम पिता के समीप रहते हुए उत्तम सुमति पाने का लाभार्थी हों। इस भावना को मन्त्र इस प्रकार कह रहा है:

अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम।

मा नोअतिक्य आ गहि॥

ऋग्वेद १.४.३॥

विगत मन्त्र में पिता ने जीव को निर्देश दिया था कि हे जीव ! तू अपने जीवन को यज्ञात्मक बना, जीवन में सोमपान कर तथा दान करने में ही आनन्द अनुभव कर। इस मन्त्र में प्रभु के इस आदेश का पालन करने की शक्ति पाने के लिए शान्ति की याचना के साथ जीव प्रभु से प्रार्थना करता है कि :

१. हे पिता ! हम ने सोमपान पाने की कामना के लिए साधना आरम्भ की है। ऐसे साधक हम आप की अन्तिकम में अत: वासी बन कर अत्यन्त समीप रहें, हम आपके अधिक से अधिक समीप रहने के लिए आप हमारे हृदयों में स्थान ग्रहण कर विद्यमान हों। इस प्रकार उत्तम मतियों, बुद्धियों उत्तम विचारों व उत्तम ज्ञानों का प्रकाश हमें प्राप्त करावें।

हमारी प्राचीन वैदिक परम्परा यही है कि गुरु के चरणों में बैठकर हम शिक्षा प्राप्त करते हैं। शिक्षा काल में गुरु ही हमारा माता, गुरु ही हमारा पिता होता है, वह ही हमारा भाई, मित्र तथा अन्य भी जितने शिक्षात्मक सम्बन्ध होते हैं, वह सब गुरु ही होता है। विद्यार्थी जितना गुरु के समीप रहेगा, उतना ही अधिक व उत्तम ज्ञान का प्रकाश उसे मिलेगा। इसलिए ही हम गुरु कुलीय शिक्षा को उत्तम मानते हैं क्योंकि शिक्षा काल में ब्रह्मचारी (जिसे आजकल विद्यार्थी कहते हैं) गुरु के पास ही निवास करते हुए शिक्षा प्राप्त करता था। इस शिक्षा के ही परिणाम स्वरूप भारत में महान योद्धा महान विद्वान व महान विचारकों को पाते हैं। यह तो अंग्रेजों ने शिक्षा की विधि में परिवर्तन कर इस देश का सत्यानाश कर दिया, इसे अपनी ही संस्कृति का दुश्मन बना दिया अन्यथा हमारी धरोहर थी, जिससे पैदा होने वाले इस देश के शर्मा प्रत्येक क्षेत्र में अग्रणी थे।

उत्तम शिक्षा पाने के लिए गुरु के समीप निवास होने का आदेश मन्त्र ने दिया है। इसलिए ही भारतीय विद्यार्थी गुरु को अपने हृदय में स्थान देकर, उसके अन्त:वासी बनकर, उसमें शिक्षा पाता था। इस तथ्य के आधार पर जब हम मानते हैं कि वह परमात्मा हमारा सब से उत्तम गुरु होने के कारण हमारी यह कामना है कि वह हमारे हृदय में निवास करे। हम उसे अपने हृदय में आसीन कर उससे उत्तम बुद्धियों को उत्तम ज्ञानों को व उत्तम विचारों का ज्ञान प्रतिक्षण प्राप्त करते रहते हैं तथा हे प्रभु ! आपको अपने हृदयस्थ करते हैं तथा अपने ही अन्दर विद्यमान होने के नाते आप के ज्ञान को पाने के लिए हम सदैव ही यत्न करते रहते हैं।

इस सूक्त के दूसरे मन्त्र में भी यज्ञ करने, सोमपान तथा दान से यह बात ही संकेत की गई थी। जब हम यज्ञशील होंगे, जब हम अपने सोम अर्थात् अपने वीर्य की, अपनी शक्ति की रक्षा के लिए संयमी जीवन बनाएंगे तथा दान करेंगे, इस सब से यह ही भाव प्रकट किया गया है कि हम परोपकार की भावना को सम्मुख रखते हुए संयमी बनकर अपनी शक्तियों की रक्षा करते हुए शिक्षा प्राप्त करें तथा फिर प्राप्त ज्ञान का दान करें। इस प्रकार हम लोभ की भावना से ऊपर उठेंगे तो हे प्रभु ! क्योंकि आप हमारे अन्त: स्थित हैं, आपके अन्त: स्थित होने के कारण जो प्रकाश आप हमारे अन्दर दे रहे हैं, उसके दर्शन हम क्यों न करेंगे ? अवश्य करेंगे।

२. मन्त्र में दूसरी बात का जो उपदेश किया गया है, वह है कि वह प्रभु हमें छोड़कर अन्यों को ही अपने ज्ञान का दान न करे। इस का भाव यह है कि प्रभु हमें दान का पात्र समझे। कहीं ऐसा न हो कि हमें अपात्र समझ कर छोड़ दे तथा दूसरों को ही यह उत्तम ज्ञान बांटने लग जावे। इसलिए यहां प्रार्थना की है कि हम प्रभु से, उसका ज्ञान पाने के पात्र बनें। हम पुरुषार्थ कर अपने आप को इस योग्य बनावें कि हम उस प्रभु से ज्ञान पाने के अधिकारी बनें।

३. मन्त्र के इस तीसरे व अन्तिम खण्ड में प्रार्थना करते हुए जीव कह रहा है कि हे प्रभु ! आपका हमारे हृदय में निवास बना रहे। जैसे कि उपर उपदेश किया गया है कि ज्ञान के अभिलाषी प्राणी को गुरु के अधिक से अधिक समीप रहना आवश्यक है। जब हम उस पिता से ज्ञान की कामना करते हैं तो उस पिता के अधिक से अधिक रहना आवश्यक हो जाता है। अत्यधिक समीपता हृदय से ही होती है। इसलिए हम उसे अपने हृदय में स्थापित करते हैं, अपना अन्त: वासी करते है ताकि उसके निकट रहते हुए, उससे सदा ही उत्तम ज्ञान का प्रकाश प्राप्त करते रहें। ऐसा करने से ही हमारा प्रभु से सम्पर्क हो सकता है। प्रभु का यह सम्पर्क ज्ञान प्राप्ति के लिए ही तो होता है और किस लिए होता है ?

जब हम प्रभु को अपने हृदयस्थ कर लेंगे तो वह प्रभु ही हमारे आचार्य होंगे,, हम उस प्रभु के विद्यार्थी, उस प्रभु के शिष्य बन जावेंगे, तब ही हमें सुमति रुपि ज्ञान प्राप्ति का लाभ मिलेगा तथा हम कभी भी उस प्रभु से मिलने वाले ज्ञान के प्रकाश से रहित न होंगे।

पृष्ठ 1 का शेष-आत्मा का स्वरूप.....

इस विवेचन के पश्चात् हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं और प्रत्येक अपने प्रतिदिन के जीवन में अनुभव करता है, कि बाल्य आदि अवस्थाओं में परिवर्तन होते रहते हैं। पर इन परिवर्तनों के बीच में एक ऐसी सत्ता भी अनुभव में आती है, जो अपरिवर्तनशील है। जिस्के आधार पर 'यह वही है' की पहचान होती है। इसी प्रकार शारीरिक परिवर्तनों की तरह मानसिक परिवर्तनों के मध्य में भी प्रत्येक अपनी सत्ता को अपरिवर्तित रूप में अनुभव करता है। अपनी तरह ही दूसरे व्यक्तियों में भी न बदलने वाली सत्ता बिना एक के सिद्ध होती है। एक विचारशील ऐसी स्थिति में स्वाभाविक रूप से सोचता है, कि ऐसी कौन सी सत्ता है, जो स्वयं निर्विकार रहती हुई भी इन शारीरिक और मानसिक विकारों, परिवर्तनों को अनुभव करती है। तब एक विवेकशील इन अस्थिर अवस्थाओं के मध्य में एक स्थिर अमृत आत्मा को स्वीकार किए बिना नहीं रह सकता। जो अपने से सम्बद्ध इन सब परिवर्तनशील पदार्थों को अनुभव करते हुए अपनी एकता, स्थिरता को बनाए रखती है, वही अमृत आत्मा है।

महात्मा जी ने आज के प्रवचन, का उपसंहार करते हुए कहा-आज की चर्चा कुछ गम्भीर हो गई है, पर गहराई से समझने के लिए विषय की गहराई में जाना आवश्यक हो जाता है। हां, छान्दोग्य उपनिषद के इस आख्यान में भी आत्मा के लिए अनेक बार अमृत शब्द आया हैं तथा इस वर्णन से यह भी स्पष्ट होता है कि यह हमारे ही जीवन के प्रतिदिन के व्यवहार की बात हो रही है। हां, अब मधुरशील जी के मधुर गीत के पश्चात् आज का सत्संग सम्पन्न होगा। अत: आइए! सामूहिक गीत का आनन्द लें।

आधुनिक परिस्थितियों में दैनिक यज्ञ आदि कर्त्तव्यों का अनुष्ठान

-ले० मनमोहन कुमार आर्य, 196 चुक्खूवाला-2, देहरादून

वर्तमान आधुनिक समय में अधिकांश शिक्षित मनुष्यों का जीवन अत्यन्त व्यवस्तता में व्यतीत होता है। अनेक व्यक्ति तो इस बात से ही अनभिज्ञ हैं कि ईश्वर व समाज के प्रति उनके कर्तव्य क्या हैं और उन्हें कैसे पूरा किया जाता है ? ऐसे अनेक बन्धुओं को महर्षि दयानन्द सरस्वती जी लिखित ग्रन्थों का भी ज्ञान नहीं है। बहुत बड़ी संख्या में ऐसे व्यक्ति भी हैं जिन्हें ज्ञान तो है परन्तु किन्हीं कारणों से वह इनका आचरण व पालन नहीं कर पाते यद्यपि इसमें उनकी पूरी आस्था एवं श्रद्धा है। ऐसे लोगों की यह भी अपेक्षा है कि उन्हें कोई ऐसा मार्गदर्शन करे जिससे वह सम्पूर्ण न सही, संक्षेप में अपना कर्तव्य पूरा कर लें और वैदिक विचारधारा से जुड़े रहें। हमारे एक मित्र ने हमसे इस विषय में अनुरोध किया कि हम कुछ ऐसा लिखे जिससे ऐसे परिवार, जो अत्यन्त व्यस्तता का जीवन व्यतीत करते हैं, उनका कुछ मार्गदर्शन हो सके और वह उसका सरलता से आचरण भी कर सकें। अपने ऐसे ही मित्रों के लिए हम कुछ पंक्तियां लिख रहे हैं।

इससे पूर्व की हम इस चर्चा को जारी करें, हम अपना मन्तव्य निवेदन करना चाहते हैं कि हमारी महर्षि दयानन्द सरस्वती के प्रति शत-प्रतिशत निष्ठा एवं श्रद्धा है। संसार के प्रत्येक व्यक्ति को उनके बताये विचारों, मान्यताओं व सिद्धान्तों का शत-प्रतिशत पालन करना चाहिये। जीवन को पूर्ण रूप से सफल बनाने के लिए उनके विचारों एवं मान्यताओं एवं उनके द्वारा निर्दिष्ट विधियों एवं पद्धतियों के अतिरिक्त अन्य कोई उचित, सत्य एवं उद्देश्य को पूरा करने वाला मार्ग है ही नहीं। तथापि जो लोग इनसे अनभिज्ञ हैं अथवा अपनी व्यस्तताओं के कारण सन्ध्या व अग्निहोत्रादि नियमानुसार नहीं कर पाते अथवा कर पा रहे हैं उनके लाभ की दृष्टि से अपने कुछ विचार व पंक्तियां प्रस्तुत हैं।

मनुष्य का जीवन माता के गर्भ से जन्म से अथवा जब वह पिता के शरीर में प्रवेश करता है, उसके पश्चात माता के गर्भ में आता है, से आरम्भ होता है। शैशव काल में वह सभी कर्तव्यों व दायित्वों से मुक्त रहता है क्योंकि उस अवस्था में वह इनका आचरण व पालन करने योग्य नहीं होता। जन्म के समय से आरम्भ कर शैशवकाल में माता उसे धीरे-धीरे लोरियों व थपकियों आदि से कुछ प्रेरक वचन सुनाना आरम्भ करती हैं जिसे वह सुनता है और उसे जो बताया जाता है उसे समय के साथ साथ समझने लगता है। बच्चा बड़ा हो रहा होता है और जैसे जैसे उसकी समझ बढ़ती है, माता व पिता एवं परिवारजन उसको उसकी ग्राह्य शक्ति के अनुसार ज्ञान देना आरम्भ कर देते हैं। वैदिक-आर्य परिवार में जन्मा बच्चा घर पर माता-पिता को सन्ध्या-उपासना और अग्निहोत्र यज्ञ करता हुआ देखता है तो वह उनसे उनके बारे में पूछता है कि वह क्या कर रहें, क्यों कर रहे है, इसकी आवश्यकता क्या है व इससे क्या लाभ होते हैं ? यदि नहीं भी पूछते तो माता-पिता उसकी बुद्धि की ग्रहण शक्ति के अनुसार उसको अपनी ओर से स्वयं ही उसके बारे में बताते हैं और वह उनको देखकर अनायास ही सन्ध्या व हवन आदि का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। कम आयु के बालकों को सुन-सुन कर मन्त्र आदि भी स्वत: याद हो जाते हैं। जिन आर्य स्कूलों में सन्ध्या हवन हुआ करता था, वहां के लोगों से मिलने पर अनुभव होता है कि उन्हें सुन-सुन कर सन्ध्या व हवन के मन्त्र स्मरण हो गये थे और अनेकों वर्ष बीत जाने पर भी बहुत से मन्त्र उन्हें स्मरण हैं जबकि स्कूल छोड़ने के बाद उन्होंने कभी उनका उच्चारण नहीं किया। बहुत से लोग ऐसे होते हैं जिनका परिवार वैदिक विचारों एवं आर्य मान्यताओं वाला नहीं होता, हम भी ऐसे ही परिवार से रहे हैं, उनको इस प्रकार से संस्कार व ज्ञान नहीं मिल पाता और भावी जीवन में किसी पुस्तक व लेख आदि को पढ़कर व किसी मित्र व परिचित द्वारा या किसी विद्वान व उपदेशक का प्रवचन सुनकर व्यक्ति वैदिक धर्म की ओर प्रवृत्त होता है। हम भी सन् 1968-70 के मध्य अपने एक पड़ोसी आर्य मित्र श्री धर्मपाल सिंह की प्रेरणा से अपने बाल्यकाल में आर्य विचारधारा से परिचित हुए। वह अपने साथ आर्य समाज आदि धार्मिक सत्संगों आदि में ले जाने लगे और हमें पता ही नहीं चला कि कब हम पर आर्य समाज का रंग चढ़ गया। उसी का परिणाम हमारा आज का जीवन है अन्य आर्य समाज के विद्वानों के अपने अलग प्रसंग हैं जिनसे वह आर्य समाज के संसर्ग में आये और वैदिक धर्मी बन कर देश व समाज की अद्भुद सेवा की। कई बार अद्भुद संयोग देखने को भी मिलते हैं जब कि पिता अपने पुत्र की नास्तिकता दूर करने के लिए उसे महर्षि दयानन्द के सत्संग में ले गये, कालान्तर में पुत्र तो विख्यात आर्य समाजी बन गया परन्तु पिता पर महर्षि दयानन्द व उनके विचारों का कोई उल्लेखनीय प्रभाव नहीं हुआ, उनका पूजा-पाठ व उपासना पूर्ववत् जारी रही। यह प्रसंग प्रसिद्ध विद्वान, नेता, समाजसेवी, शिक्षा शास्त्री, समाज सुधारक, शुद्धि आन्दोलन के प्रशंसनीय व अग्रणीय नेता स्वामी श्रद्धानन्दजी के जीवन का है। अस्तु।

अब हम नित्य व दैनिक कर्तव्यों की चर्चा आरम्भ करते हैं। मनुष्य का जन्म माता व पिता से होता है। वही इसका पालन करते हैं, शिक्षित करते हैं एवं युवा होने पर वह अपना कोई न कोई व्यवसाय करता है और माता-पिता की सेवा करता है। अब पहला प्रश्न यह है कि उसका जन्म किससे व क्यों हुआ ? यहां वैदिक त्रैतवाद के सिद्धान्त के अनुसार तीन अनादि व नित्य पदार्थों, ईश्वर, जीव व प्रकृति को जानना आवश्यक है। प्रत्येक मनुष्य को अपने कर्मो के फलों को भोगना है एवं दु:खों से मुक्ति के लिए प्रयत्न एवं पुरूषार्थ करना है। मुक्ति को ही अपवर्ग कहते हैं। यद्यपि मनुष्य का जन्म माता-पिता से होता है परन्तु वह सन्तान को बनाते नहीं हैं और न जीव ही उनके वा किसी के द्वारा बनता व अस्तित्व में आता है। अनादि व नित्य जीव को अनादि व नित्य ईश्वर भोग व अपवर्ग के लिए माता-पिता के द्वारा जन्म देता है। हमारा वास्तविक वा यथार्थ जनक व जन्मदाता, ईश्वर वा परमात्मा है। उसी परमात्मा के द्वारा हमारा शरीर बनाया या रचा गया है। उसी ने हमारे जीवन-यापन व कर्म व भोग के लिए यह सारा संसार रचा है। इस संसार को बनाने का सामर्थ्य सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, निराकार, सर्वशक्तिमान, सृष्टिकर्ता ईश्वर के अतिरिक्त किसी में नहीं है। अत: प्रत्येक मनुष्य का पहला कर्त्तव्य है कि वह अपने जन्मदाता ईश्वर का सत्यस्वरूप पूरी तरह से जानें और फिर उसने हमारे ऊपर जो कृपा, दया, करूणा करके सर्वश्रेष्ठ मनुष्य शरीर हमें दिया है और नाना प्रकार के सुख एवं भोग प्रदान किये हैं, उसके लिये हम सब उसे स्मरण कर उसका धन्यवाद करें। हमारे ऋषि-मुनियों ने मनुष्यों का पहला कर्तव्य 'सन्ध्या-उपासना' निर्धारित किया है। इसके लिए पहले ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करना है और फिर उस यथार्थ ज्ञान से ईश्वर की स्तुति, उसका गुणगान, प्रार्थना, उससे श्रेष्ठ बुद्धि आदि मांगना एवं उसकी उपासना अर्थात् उसके समीप बैठ कर उसके गुणों का ध्यान करना, अपने अवगुणों का विचार कर उनको पहचानना व छोड़ने का संकल्प करना अर्थात् 'दुरितानि परासुव' तथा भद्र व सदगुणों की प्राप्ति के लिए प्रार्थना करना व उन्हें धारण करना है। जब यह स्तुति प्रार्थना व उपासना सिद्ध हो जाती है तो आत्मा के अज्ञान व अविद्या के आवरण हट जाते हैं और वह शुद्ध हो जाता है और शुद्ध व स्वच्छ दर्पण की भांति अपनी आत्मा व परमात्मा को साक्षात् देख पाता है। ध्यान में निरन्तर ईश्वर के गुणों व उसकी कृपाओं का चिन्तन करते हुए व सांसारिक ऐषणाओं से स्वयं को दूर रखते हुए ईश्वर की प्राप्ति के लिए साधना एवं अभ्यास द्वारा उसमें इस प्रकार से मग्न व भाव-विभोर होना होता है जैसे कि एक गोताखोर नदी या सुमद्र की सतह व तल पर जाकर उसमें यथोचित समय तक रूककर बाहर आता है। इसी प्रकार ईश्वर का ध्यान व उपासना करते हुए अधिक से अधिक समय, प्रात: व सायं, न्यूनतम एक घंटा, सन्ध्या करनी होती है। देश भर के सभी आर्य समाजों व दिल्ली एवं अन्य स्थानों के आर्य प्रकाशकों आदि से सन्ध्या-हवन-यज्ञ पद्धतियों की पुस्तकें मिल जाती हैं। ऐसा करने पर ईश्वर को जानना, मानना व उसका ध्यान व उपासना करने का पहला कर्तव्य पूरा हो जाता है। सन्ध्योपासना की विधि महर्षि दयानन्द द्वारा सरल भाषा में पुस्तक में लिखी हुई है जिसका पालन करके लाभ होता है। साधक को सभी मन्त्रों को स्मरण करने का प्रयास करना चाहिये। सभी मन्त्रों व उसके प्रत्येक पद व शब्द का अर्थ भी जानकर सन्ध्या में मन्त्रोच्चारण करते समय उनके अर्थ के अनुरूप भावना रखनी चाहिये व मन को ईश्वरोपासना में लगाना चाहिये। (क्रमश:)

वेद वाणी

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।।
इदमहमनृतात् सत्मुपैमि।।

विनय-हे अग्ने ! तुम व्रतपति हो। मैं तो बहुत से व्रत धारण करता हूँ, पर उन्हें निभा नहीं सकता। एक समय पर दृढ़ निश्चय से, पूरी गंभीरता से किसी व्रत को ग्रहण करता हूँ, पर बाद में गिरावट हो जाती है, धीरे-धीरे वह व्रत-नियम ढीला होता जाता है और छूट जाता है। इसलिए हे व्रतपते ! मैं आज तेरी शरण आया हूँ। आज वह दिन आ गया है जब कि मैं तुझ व्रतपति के सामने अटल, अडिग व्रत को धारण कर सकूँगा। हे अग्ने ! आज मैं तुझे साक्षी रखकर तेरे प्रताप से ऐसे परिपूर्णतया व्रत को धारण करूँगा कि इस व्रत का आगे कभी भी भंग नहीं हो सकेगा। मैं अन्तः करण से कहता हूँ कि धारण किये हुए व्रत को अब मैं प्राणपण से निबाहूँगा, इस पर अवश्य आचरण करूँगा, इससे रत्ती-भर भी इधर-उधर विचलित नहीं होऊँगा। हे व्रतपते ! मैं जानता हूँ तुम अपने व्रतों के ऐसे परिपूर्ण पति हो कि तुम्हारे व्रत कभी कहीं किसी के लिए कुछ भी नहीं टल सकते; तुम मेरे व्रत के भी पति हो जाओ, मेरे इस व्रत की भी रक्षा करो, इसके पालक हो जाओ। तुम ऐसी कृपा करो, ऐसी शक्ति प्रदान करो कि मैं इस व्रत को पूरा कर सकूँ, इसे पूरा करने में अवश्य समर्थ हो सकूँ। मेरा यह व्रत संसिद्ध हो, अवश्य पूर्ण हो। मैं आज अन्य बातों को छोड़कर सत्य के ही महान् व्रत को ग्रहण करता हूँ। यदि मैं इस सत्य के व्रत का पालन कर सकूँगा, तो अन्य व्रतों का पालन मेरे लिए कुछ भी कठिन नहीं रहेगा। तो यह लो, हे अग्ने ! मैं आज से अनृत को छोड़कर सत्य को ग्रहण करता हूँ। हे प्रकाशस्वरूप ! मैं अनृत से सत्य को प्राप्त हो जाता हूँ। मैं आज से मन, वाणी और कर्म से सत्य का ही पालन करूँगा। मैं सत्य को ही जानूँगा और सत्य को ही प्रकट करूँगा। मेरे हृदय में जो कुछ होगा उसे ही वाणी में लाऊँगा और उसे ही अपनी क्रिया द्वारा प्रकट करूँगा। मैं जानता हूँ कि यह कठिन है, परन्तु हे अग्ने ! तेरी सहायता से इस संसार में कुछ भी कठिन नहीं है, कुछ भी असम्भव नहीं है। इसलिए हे व्रतपते ! मैं तो आज से सत्यव्रती हो गया हूँ, आज ही से 'सत्य' का हो गया हूँ।

-साभार वैदिक विनयः प्रस्तुति रणजीत आर्य

अध्यापकों की आवश्यकता

श्री गुरु विरजानन्द संस्कृत महाविद्यालय, करतारपुर में निम्नलिखित अध्यापकों की आवश्यकता है।

1. वेदाचार्य वेद तथा संस्कृत एम. ए. 2. साहित्यचार्य/एम. ए. संस्कृत 3. व्याकरणाचार्य/एम. ए. संस्कृत 4. दर्शनाचार्य/एम. ए. संस्कृत 5. कम्प्यूटर टीचर

नोट-(क) आचार्य परीक्षा पास अध्यापकों को वरीयता प्रदान की जाएगी।

(ख) सेवानिवृत्त संस्कृत विद्वान/विदुषियां भी इस पद के लिए आवेदन भेज सकते/सकती हैं।

(ग) वेतन योग्यतानुसार दिया जाएगा।

(घ) आवेदन पत्र शीघ्रातिशीघ्र भेजे जाएं और आवेदन पत्र पर अपने मोबाइल नंबर अवश्य दें। **-भूषण लाल शर्मा प्राचार्य**

गुरूकुल का आयुर्वेद महान
घर-घर में मिले रोगों से निदान

100 गुरुकुल शताब्दी

गुरुकुल च्यवनप्राश
सभी के लिए स्वादिष्ट, रुचिकर, पौष्टिक रसायन।

गुरुकुल पायोकिल
पायोरिया की आयुर्वेदिक औषधि
दांतों में खून रोके, मुंह की दुर्गन्ध दूर करे,
मसूड़ों के रोग, ढीले दांत ठीक करे।

गुरुकुल शतशिलाजीत सूर्यतापी
पुष्टीदायक, बलवर्धक
शरीर में नया खून और उत्साह का अनुभव

गुरुकुल ब्राह्मी रसायन
बुद्धिवर्धक, स्फूर्तिदायक, दिमागी कमजोरी दूर करे।

गुरुकुल मधुमेह नाशिनी गुटिका
मधुमेह एवं प्रत्येक प्रकार के प्रमेह में लाभदायक

गुरुकुल मधु
गुणवत्ता एवं ताज़गी के लिए

गुरुकुल चाय
खाँसी, जुकाम, इन्फ्लूएंजा व
थकान में अत्यंत उपयोगी।

अन्य प्रमुख उत्पाद
गुरुकुल द्राक्षारिष्ठ
गुरुकुल रक्तशोधक
गुरुकुल अश्वगंधारिष्ट

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार डाकघर : गुरुकुल कांगड़ी-249404, ज़िला-हरिद्वार (उत्तरांचल) फोन : 0134-416073

शाखा कार्यालय : 63, गली राजा केदार नाथ, चावड़ी बाज़ार, दिल्ली-6, फोन : 23261871

श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा आर. के. प्रिंटर्स प्रैस, टाण्डा फाटक जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ। **E-mail: apspunjab2010@gmail.com**
आर्य मर्यादा में प्रकाशित सारी लेखन सामग्री से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं। प्रत्येक विवाद के लिए न्याय क्षेत्र जालन्धर होगा।